

श्रीनगर "श्रीक्षेत्र" का माहात्म्य

डॉ० दयाधर सेमवाल

सहायक प्राध्यापक इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अगस्त्यमूनी रुद्रप्रयाग

श्रीनगर प्राचीन काल से गढ़वाल में राजनीति, कला, शिक्षा और संस्कृति का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। यह स्थान प्राकृतिक रूप से जितना मनोहारी है, सांस्कृतिक रूप से इसका इतिहास भी उतना ही महत्वपूर्ण रहा है। उत्तराखण्ड में अलकनन्दा उपत्यका का श्रीनगर अंचल, कश्मीर की झेलम उपत्यका के श्रीनगर के समान ही विशेष ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व रखता है। वह श्रीनगर यदि ऋषि भूमि/फिरदौस-वर-रू-इ-जीम से लेकर पैरेडाइज आन अर्थ कहलाया था तो यह श्रीनगर भी देवभूमि का "श्रीक्षेत्र" रहा है जहाँ साक्षात् बोलांदा बद्रीनाथ निवास करता था। यहाँ का हर पत्थर, हर चप्पा यहाँ के प्राचीन इतिहास की कहानी को अपने में संजोये है, यही वह श्रीनगर है जो "श्रीक्षेत्र", "श्रीपुर", "ब्रह्मपुर" के नाम से जाना जाता रहा है। इन नामों के मूल में "श्री" शब्द सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा तीनों का प्रतीक होने के कारण श्रेष्ठ महत्व का द्योतक है। इन नामों द्वारा इसे जानने के पीछे अनेक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पौराणिक, मान्यतायें एवं परम्परायें हैं। स्कन्द पुराण के केदारखण्ड में इसे "श्री क्षेत्र" कहा गया है। पौराणिक कथा के अनुसार महाराजा सत्यसंध ने एक पाशाण शिला पर श्रीविद्या यन्त्र की स्थापना की तथा श्रीदेवी की उपासना प्राप्त करके सिद्धि प्राप्त की थी, देवी के प्रभाव से प्राप्त खड्ग से सत्यसंध ने कोलासुर नामक किरात का वध कर यज्ञानुष्ठान द्वारा वेदोक्त विधि से इस नगर को बसाया था। कोलासुर का सिर पूर्व दिशा में तथा धड़ पश्चिम दिशा में फेंका था, जिन स्थानों पर ये अंग गिरे उसी दूरी का मध्य भाग श्रीयन्त्र के कारण "श्रीक्षेत्र" नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्रीनगर की चारों दिशाओं में चार क्षेत्रपाल हैं। पूर्व दिशा का क्षेत्रपाल घस्या महादेव है, इस महादेव पर आने-जाने वाले पथिक घास, तृणादि चढ़ाया करते थे, जिससे इस घस्या महादेव कहा जाने लगा। दक्षिण दिशा के क्षेत्रपाल ऊँचे पर्वत श्रृंग पर स्थित अष्टावक्र शिव हैं, पश्चिम दिशा के क्षेत्रपाल काण्डा गाँव में हैं, जहाँ शिव भैरव का मंदिर है और उत्तर दिशा के क्षेत्रपाल माणिक नाथ जी हैं, इन चारों क्षेत्रपालों के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र "श्री-क्षेत्र" है।

महाभारत काल में यह नगर "श्रीपुर" के नाम से प्रख्यात था, (पुर का अर्थवाची शब्द नगर या शहर भी होता है) तथा राजा सुबाहु की राजधानी था, जिसके यहाँ गन्द मादन पर्वत (बद्रीनाथ) जाते हुए पाण्डव अतिथि बनकर रहे थे। साथ ही इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन ने पाशुपति अस्त्र प्राप्त करने के लिए तप किया था। यह इन्द्रकील पर्वत श्रीनगर के सामने उत्तर दिशा की ओर स्थित है। "श्री-क्षेत्र" के अन्तर्गत भिल्लकेदार है, यहाँ शिल्ल के रूप में शिव की पूजा-अर्चना विशेष रूप से अर्जुन ने की थी। अर्जुन को शिव से शीशण युद्ध करना पड़ा था, शिव के गण किल-किल भाब्द का उच्चारण करते थे। इसलिए यह महत्वपूर्ण स्थान किलकिले वर के नाम

से प्रसिद्ध हुआ। इन समस्त उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि महाभारत काल में यह प्रमुख स्थान था।

पौराणिक व्याख्याओं के अनुसार यहाँ बराह अवतार के समय कामे वरीदेवी की स्थापना हुई। यह भी उल्लेख मिलता है कि मुनि भीलनिधि की कन्या का स्वयंवर स्थल यही है, मुनि नारद इस कन्या को देखकर मोहित हुये थे तब उनका अहंकार एवं मोह भंग करने के लिए ही विश्णु जी ने इस नगर की स्थापना की थी, इसके अतिरिक्त इस पवित्र स्थान पर त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र जी रावण "ब्रह्महत्या" से मुक्ति पाने के लिए कमले वर महादेव जी की उपासना करते हुए नित्यप्रति एक हजार कमल पुष्प चढ़ाया करते थे जबकि केदारखण्ड एवं "श्री-क्षेत्र" श्रीनगर में एक हजार के स्थान पर केवल सौ पुष्पों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है कि भगवान राम रूपी जनार्दन ने प्रतिदिन सौ कमलों से उस लिंग का पूजन किया था तभी से यह 'कमले वर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। कमल चाहे सौ हो या हजार इससे यह स्पष्ट होता है कि राम द्वारा यहाँ पूजा-अर्चना की गयी थी। इसके साथ ही यह स्थान चन्द्रमुण्ड का संहार व महाकवि भारवि के "किरातार्जुनियम" का क्रीडास्थली भी रहा है। भारवि ने इस महाकाव्य की रचना सम्भवतः यहीं अलकनन्दा के तट पर की थी।

ऐतिहासिक रूप से सन 634 ई0 में 'ब्रह्मपुर' नाम से श्रीनगर का सर्वप्रथम उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा किया गया है, "हरिद्वार से उत्तर की ओर 100 मील की दूरी पर (पो-बो-ली-ही-मो-पु-लो) ब्रह्मपुर है। अब अनेक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से स्पष्ट हो चुका है कि वह 'ब्रह्मपुर' श्रीनगर ही था। तात्पर्य यह है कि पुराण और महाभारत काल में भी यह नगर अस्तित्व में आ चुका था। तब चाहे इसका जो भी नाम रहा हो और जैसी भी भौगोलिक स्थिति रही हो, क्योंकि पृथ्वी में बाढ़, भूकम्प और भूस्खलन से समय-समय पर अनेक परिवर्तन होते रहते हैं, यह उक्ति श्रीनगर के सम्बन्ध में कुछ ज्यादा ही महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि जिस प्रकार दिल्ली समय प्रति समय 14 बार उजड़ती गयी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसती गई और जहाँ-जहाँ स्थानान्तरण में बसती गई दिल्ली के नाम से ही प्रसिद्ध रही, ठीक वही स्थिति श्रीनगर की भी है। श्रीनगर शताब्दियों तक आवाद रहता है और फिर शताब्दियों तक उजाड़ वन के रूप में रहता है। यह नगर दो नामों (प्राचीन और वर्तमान श्रीनगर) से जाना जाता है। प्राचीन श्रीनगर वर्तमान श्रीनगर से एक किलोमीटर पश्चिम में अलकनन्दा के बांये तट पर अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर बसा था। अर्थात् वर्तमान कमले वर-उफलडा के मध्य राजमार्ग व अलकनन्दा नदी के मध्य एस0एस0बी0 एवं पौलिटैक्निक में बसा था। यह 30" 12' तथा 78" 17' देशान्तर पर 500 मीटर ऊँचाई पर धनुशाकार नगर माना जाता है। इसलिए यहाँ के लिए केदारखण्ड में "धनुशतीर्थ" शब्द का प्रयोग हुआ है। अधिकांश विद्वानों एवं इतिहासकारों का मत है कि यहाँ पर अलकनन्दा धनुश के समान आकृति बनाती है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी देखा जा सकता है।

यह ऐतिहासिक नगर सदैव किसी न किसी राजा की राजधानी के रूप में बना रहा। महाभारत काल में श्रीनगर राजा सुबाहु की राजधानी थी, वहीं 1500 से 1803 ई0 तक पंचार वं पीय

राजाओं की राजधानी, 1803–1815 ई0 तक गोरखों की राजधानी, तत्पश्चात् ब्रिटिश सेना का मुख्यालय यहाँ रहा है। सातवीं सदी ई0 में आये चीनी यात्री ह्वेनसांग भी इस नगर की ऐतिहासिकता का उल्लेख करते हुए लिखता है "राजधानी ब्रह्मपुर छोटी है लेकिन निवासी बहुत ही समृद्ध हैं। जलवायु किंचित भीतल है तथा उसी के समान निवासियों का व्यवहार भी ठंडा और रूखा रहता है।

सोलहवीं सदी ई0 में भक्ति सम्प्रदाय के प्रचारक श्री बल्लभाचार्य बद्रीनाथ जाते समय श्रीनगर रुके थे इसकी पुष्टि देवप्रयाग के लक्ष्मी विद्या मंदिर में रखा उनका हस्तलेख है। बल्लभाचार्य के आगमन के कुछ ही वर्ष पूर्व गढ़वाल नरेश अजयपाल ने मध्यकालीन श्रीनगर की नींव (लगभग 1500 ई0) डाली थी, और तब यह भू-भाग "61 ज्यूला में फैला धनाई रौतेला की सम्पत्ति था"। श्रीनगर को स्थापित करने और राजधानी बनाने का श्रेय अजयपाल को ही है, उन्होंने देवलगढ़ से राजधानी को श्रीनगर स्थापित की थी।

श्रीनगर को राजधानी के रूप में चयनित करने के सन्दर्भ में प्रचलित स्थानीय जनश्रुति के अनुसार जब राजा अजयपाल आखेट हेतु श्रीनगर के चौरास क्षेत्र में आये तो एक शशक द्वारा उनका एक शिकारी कुत्ता मारा गया, यह अपूर्व घटना थी, इसी रात्रि राजा को स्वप्न में भगवती जगदम्बा ने बताया कि यह सिद्ध स्थल है, यहाँ अलकनन्दा में एक शिला पर श्री यन्त्र है, यही श्री-क्षेत्र है, वह इस भूमि पर राजधानी स्थापित करे। अतएव इस जनश्रुति से स्पष्ट होता है इस स्थान की धार्मिक महत्ता होने के कारण यहाँ राजधानी की स्थापना की गई होगी। इसके अतिरिक्त यह स्थान राज्य के मध्य में भी स्थित था।

1608–11ई0 में अंग्रेज पर्यटक विलियम यमाफ्रिचं श्रीनगर आया था, उसने अपने यात्रा वर्णन में यमुना-गंगा के मध्यदेश (उत्तरीभाग) पर राज्य करने वाला राजा मानशाह और उसकी राजधानी श्रीनगर के ऐश्वर्य का वर्णन किया था। 1624 ई0 में यूरोपियन धर्म-प्रचारक व पर्यटक पादरी अन्द्रां दे श्रीनगर आया एवं उसने राजा भयाम शाह की सैन्य-व्यवस्था का वर्णन किया है। 1656 ई0 के बाद प्रमुख पर्यटक वर्नियर यहाँ आया, उसने 12 वर्ष तक भारत भ्रमण कर एक मानचित्र प्रदर्शित किया है। इसमें वह 'सेरेनगर' राज्य को अलकनन्दा के दक्षिणी ओर प्रदर्शित करता है जिसकी पुष्टि महाकवि भूशण के 'श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल' में श्रीनगर के लिए 'सिरीनगर' से होती है।

प्रमुख मुगल शासक भाहजहाँ की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली राजसिंहासन के लिए झगड़ा पैदा होने पर दारा शिकोह के पुत्र शहजादा सुलेमान शिकोह ने भाग कर महाराजा पृथ्वीपति शाह के दरवार में शरण ली थी। 1698 ई0 में मदन नाम के ज्योतिशलंकार कवि इस नगर में आये और दो वर्षों तक राजदरबार में भास्त्रार्थ करते रहे। इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों एवं परिवर्तनों के ऐतिहासिक पथ पर अग्रसर होता हुआ यह भाहर गढ़वाल राज्य के प्रथम शासक

महाराजा कनकपाल जो सन् 888 ई० में सिंहासनारूढ़ हुए तथा उनकी सैंतीसवीं पीढ़ी के महाराजा अजयपाल के समय में इस ऐतिहासिक भाहर की स्थापना हुई।

इस ऐतिहासिक एवं समृद्ध शाली शहर को अनेक आपदाओं एवं विपदाओं का भी सामना करना पड़ा, अगर ये आपदायें व विपदायें इस भाहर का विनाश न करती तो सम्भवतः स्थिति आज कुछ अलग ही होती, तथा विश्व के प्रमुख शहरों में इसका भी स्थान होता। इस शहर को सन् 370 ई०, 870 ई०, 1378 ई० में बाढ़ों का सामना करना पड़ा फिर 1791-92 ई० से 1805ई० तक निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं, (भूकम्प, ओलावृष्टि, अनावृष्टि, अकाल) आन्तरिक कलह से शहर संत्रस्त एवं नष्ट हो चुका था जिसमें 1803 ई० के विनाशकारी भूकम्प ने इस शहर की जड़ तक को हिला कर रख दिया। जिसे 1805-1815 ई० तक के गोरखा शासन ने निर्जीव एवं अर्थहीन बना दिया था, और रही-सही कसर 25 अगस्त, 1894 ई० को गोहना ताल के टूट जाने के कारण अलकनन्दा में आई बाढ़ ने पुराने श्रीनगर को पूर्णतः तहस-नहस कर दिया, जिससे इस शहर का नामों निशा तक मिट गया। इस प्राकृतिक विपदा के पश्चात् 1896 ई० में ब्रिटिश अधिकारी तत्कालीन जिलाधिकारी श्री 'ए० के० पौ०' ने जो स्काटलैण्ड के निवासी थे, नगर के पुनर्निर्माण हेतु प्रस्ताव तैयार किये तथा विनाश लीला से बचे भाग में कोठड़, कोटचूला एवं भलगौंव को सम्मिलित कर अपने गृहनगर स्काटलैण्ड के नक्शे व जयपुर के चौपड़ बाजार के आधार पर ध्वस्त श्रीनगर से पाँच फलांग (लगभग एक किलोमीटर) पूर्व में वर्तमान में स्थित श्रीनगर को बसाया है जो एक नियोजित शहर होने के साथ-साथ पुनः गढ़वाल का प्रमुखतम् केन्द्र है, और धीरे-धीरे अपने पूर्ववर्ती इतिहास काल धर्म, राजनीति आदि के गौरव को प्राप्त करने के मार्ग में अग्रसर है। वर्तमान श्रीनगर 30° 13" अक्षांश और 78° 48'-15" देशांतर पर समुद्र-सतह से 1758 फीट की ऊँचाई पर तथा मुख्यालय पौड़ी से सात मील की दूरी पर स्थित है।

इस ऐतिहासिक भाहर में अनेक स्थल ऐसे हैं जो इस भाहर की ऐतिहासिकता को चरितार्थ करते हैं और जिनका अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है। इन स्थलों में श्रीनगर के दक्षिण भाग में देवर्शि नारद का आश्रम था, इस स्थल पर शिव ने कामदेव को भस्म किया था। नारद ने बद्रीकाश्रम से आकर अलकनन्दा के तट पर एक पवित्र गुफा में समाधि लगाई थी, यही स्थल विश्वमोहिनी जी जन्म भूमि और नारद मोह की स्थली है।

अलकनन्दा के उत्तरी तट पर स्थित कुण्ड को ब्रह्मकुण्ड कहते हैं। यहीं पर 'ब्रह्मा' जी ने एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी एवं उसके पुत्र के तप से प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये थे। ब्रह्मकुण्ड से कुछ दूरी पर अश्वतीर्थ है यहाँ राजा नरिश्यन ने यज्ञ किया था। उस राजा के अश्व को इन्द्र उठाकर ले गये थे। शिव की तपस्या कर राजा ने अपना अश्व पुनः प्राप्त कर यज्ञ पूर्ण कर स्वर्गारोहण किया। अश्वतीर्थ के समीप धनुशतीर्थ है यहाँ पर दैत्य विड़लाक्ष ने देवल ऋशि को उसकी विश्णु-मूर्ति सहित गंगा जी में डूबो दिया था। शिवजी के एक गण ने अपने धनुश से दैत्य का संहार कर ऋशि की रक्षा की थी।

श्रीनगर में शिवजी का कमले वर मंदिर बहुत प्रसिद्ध है जिसका उल्लेख स्कन्द पुराणान्तर्गत केदारखण्ड ग्रन्थ में विद्यमान है। वर्तमान में कमलेश्वर नाम से प्रसिद्ध इस भौव पीठ का पूर्वनाम शिल्हे वर था। श्री रामचन्द्र जी ने रावण वध के पश्चात् ब्रह्महत्या के शाप से मुक्ति हेतु इसी मंदिर में पूजा की थी। कहा जाता है कि मानसरोवर से 'सौ' कमल लाकर रामचन्द्र जी शिवजी को अर्पण करते थे। एक बार जब राम ने अपने संकल्पानुसार 99 कमल शिव पर अर्पण किये तो एक कम हो गया (जबकि अनेक इतिहासकारों ने कमलों की संख्या 999 लिखी है) तो शिव भक्त राम ने विचार किया कि कमल प्राप्ति का स्थान दूर है, अतः अपने नेत्र को जो कमल कहलाते हैं अपर्ण कर अपनी पूजा करूँ, जैसे ही हरि (भगवान राम) अपने दक्षिण नेत्र को निकालने के लिए तैयार हुए वैसे ही शिव प्रकट हो गये और छुपाये कमल को राम को सौंप दिया, तब राम ने अन्तिम कमल अर्पण कर यज्ञ पूर्ण किया, उसी समय से शिल्हे वर महादेव कमले वर महादेव के नाम से विख्यात हुये। कमले वर मंदिर की प्रसिद्धि का अन्य प्रमुख कारण कार्तिक मास के भुक्ल पक्ष में मनाया जाने वाला बैकुण्ठ चतुर्दशी का मेला है। इस अवसर पर सन्तान प्राप्ति हेतु दूरदराज से आये महिला-पुरुष रात्रि जागरण कर महादेव से सन्तान प्राप्त की कामना करते हैं। इस वैज्ञानिक युग में भी यह परम्परा नियमित रूप से जारी है तथा श्रद्धालुओं की संख्या में कोई कमी नहीं आ रही है। यहाँ तक रात्रि जागरण में डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक भी सम्मिलित होने के दृष्टांत यदा-कदा देखने को मिल जाते हैं।

अलकनन्दा नदी की ओर जाने के मार्ग पर कंसमर्दनी देवी का अति प्राचीन मंदिर है। इसकी प्राचीनता इस बात से स्पष्टतः सिद्ध हो जाती है कि, उसके आस-पास का स्थान तब से आज तक कंसमर्दनी के नाम से जाना जाता है। इस पीठ की नौरत, मण्डापण, अठवाड और महामारी से बचाने वाली देवी के रूप में प्रसिद्धि थी। जब यज्ञकुण्ड में भस्म हुई सती के दग्द शरीर को लेकर शिव ने बद्रीकाश्रम में गमन किया था, तब सती के शरीर का कुछ अंश यहाँ पर गिरा था। इससे यहाँ पर मंदिर का निर्माण किया गया। मंदिर के अन्दर मध्यभाग में जहाँ पर यह अंश गिरा था एक कुण्डी पर देवी की पूजा होती है जो आवरण युक्त है मंदिर में मूर्ति नहीं है। इस प्रकार ये प्रमुख स्थान श्रीनगर की ऐतिहासिकता को प्रदर्शित करने के मुख्य स्रोत हो जाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

- i. नैथानी, शिव प्रसाद, 1998, "उत्तराखण्ड श्री क्षेत्र श्रीनगर," पृष्ठ -49 पवेत्री प्रकाशन, श्रीनगर गढ़वाल।
- ii. इन्द्रीलं समासाद्य ततो तिष्टदधनंजय।अन्तरिक्षेऽतिशु श्राव तिष्टति स वचस्तदा।।(वन पर्व महाभारत, 1997, अध्याय 37/42 श्लोक, गीताप्रेस, गोरखपुर।)

- iii. इतो गच्छाधुनाश्वर्य इन्द्रकीले सुशोभने। जाहनव्या च समीपेवै स्थित्वा सम्यक् तपः कुरु।। (भातरुद्रसंहिता अध्याय- 37 / 65, गीताप्रेस, गोरखपुर।)
- iv. मैठाणी, उमा, 1991, "श्रीनगर" साप्ताहिक गढ़वाल मण्डल का गढ़वाल यात्रा पर्यटन विशेषांक : पृष्ठ -147, हिमवन्त प्रेस, पौड़ी।
- v. कुंवर, शकुन्तला, 1998, "श्रीनगर एक ऐतिहासिक परिचय", पृष्ठ -17, स्मारिका नगर पालिका परिषद, श्रीनगर गढ़वाल।
- vi. "उत्तरांचल नगर विकास" साझेदारी पत्रिका: अप्रैल 2003, पृष्ठ -9, श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम।
- vii. नैथानी, शिवप्रसाद, 1982, "उत्तराखण्ड: संस्कृत साहित्य और पर्यटन", पृष्ठ-86, सरस्वती पब्लिकेशन, श्रीनगर।
- viii. अजयेपालो नृपतिः स आसीत् चन्द्रन्वये चन्द्र समान कीर्ति। निर्माण्यश्यः श्रीनगर विधान सरितास्थां निज राजधानीभ।। (शास्त्री, मेधाकर, "रामायण प्रदीप" अध्याय-1 श्लोक-17।)
- ix. डबराल, शिव प्रसाद, "उत्तराखण्ड का इतिहास", भाग-4 के पृष्ठ -2 पर छपा मानचित्र।
- x. डबराल, शिवप्रसाद, बुद्धपूर्णिमा-2035, पूर्वोक्त, भाग -8, खण्ड-2, पृष्ठ - 32।
- xi. एटकिंशन, ई0टी0, 1998, "हिमालयन गजेटियर" अनुवादक प्रकाश थपलियाल बसंत कुसुमाकर, उत्तराखण्ड प्रकाशन, हिमालय संचेतन संस्थान आदिबद्री, चमोली।
- xii. रतूड़ी, हरिकृष्ण, 1995, "गढ़वाल का इतिहास" भागीरथी प्रकाशन सुमन चौक, टिहरी।